ओ३म्

लघुवेदान्त वाक्य वृत्ति

श्री शङ्कराचार्य कृत

स्वामी सरयूदास कृत भाषा संस्कृत

पुष्पांजली टीका सहित

इंन्दिरा प्रेस खुरजा में पं० होती लाल मिश्र
के प्रबन्ध से मुद्रित और प्रकाशित हुई

खुरजा

प्रथम बार　　　　मूल्य =)

सन् १९१४

॥ ओ३म् ॥

॥ श्री गणेशायनमः ॥

—:):❀:(:—

त्पद्यते विनाज्ञानं विचारेणान्य साधनैः ।
था पदार्थ भानंहि प्रकाशेन विना क्वचित् १
अज्ञाना त्प्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते ।
सङ्कल्पो विविधः कर्ता विचारः सोयमीदृशः २

ान्त शास्त्र का दृष्टि सृष्टि वाद कथन है कि दृष्टिसे सृष्टि की पत्ति होवे है और जब दृष्टि लीन होजावे तब सृष्टि भी लीन हो वे है तिसका यह अभिप्राय है कि प्रथम सृष्टि के एक शुद्ध तन्य परब्रह्म स्थितथा और जब ईक्षणा कार वृत्ति एको हं बहुस्यां प्रजायेयेति इत्याकार इच्छा रूप दृष्टि (वृत्ति) उत्पन्न ई तभी चराचर सृष्टि की उत्पत्ति होती हुई याते दृष्टि से सृष्टि का थन किया है क्यों कि मनके संकल्प विकल्प दृष्टि से उत्पन्न होवें और संकल्प विकल्प काही नाम सृष्टि है इसी को ईच्छा ान प्रकृति माया अविद्या अज्ञान अधकार स्वभाव शक्ति ापार कुहुक कपट क्रिया येनाम हैं एकही सृष्टि केये शब्द ीय वचि कहे हैं और इनों को वेदान्त शास्त्र में चैतन्य की ाधियां और विशेषण कथन किया है और चैतन्यके .

उपहित विशिष्ट कथन किया है उपाधी वालेको ही उपहित और विशिष्ट कहते हैं उपाधी और विशेपण ये दोनो पर्याय वाची है तैसेही उपहित और विशिष्ट ये दोनो शब्द एकार्थ वाची होनेते - पर्यार्य कहे जावे है जैसे नीलो घट कृष्णो कलश ये दोनों पदोमे ॥ नील और कृष्ण ये दोनो शब्द काले रंग एक गुण के वाचक है ऐसेही घट और कलस ये दोनो एक पृथ्वी द्रव्य से बना जल पात्र के वाची हैं याते दोनो पर्यार्य कहे हैं ऐसेहि मायी माया वी ईश्वर अंतर यामी जी वादिक नाम विशिष्ट चैतन्य सबल ब्रह्मके जानना शुद्ध ब्रह्म के नहीं जैसे एक मनुष्यका अनेक विशेपणो के साथ जब सबंधं होता है तब उसके नाम न्यारे न्यारे कथन किये जावे हैं जैसे कोई मनुष्य जब बोझा उठाता है तब वह कुली कहा जाता है और जब वह रसोई का काम करता है तब वह रसोइया कहा जाता है और जब रस्ता चलता है तब वह रस्तागीर कहाजाता है और जब गाड़ी चलाता है वह गाड़ीवान कहाता है देखो एकहीं मनुष्य के विशेपण भेद होने से कितने नाम कहे जावे है इसी प्रकार एक चैतन्य का जब माया के साथ संबंध होवे तब उसका नाम मायी और माया वी ईश्वर अंतर यामी हिरराय गर्भ ब्राट आदि नाम कहे जावे हैं और उसी चैतन्य का जब अविद्या के साथ संबंध होवे तब जीव कूटस्थ चिदा भास विश्व तैजस प्राज्ञ ये नाम कहे जावे है सो केवल उपाधी भेद से

प्रतोति होवे है वास्तसे (स्वरूपसे) नहीं हैं क्योंकि एक रस अखंड़ चैतन्य मे जीव ईश्वरभावक ल्पित है जो उपाधी कृत हो वे है सो कल्पित कहा जावे है जैसे एकही ममुप्य वोझा उटाने से कुली और रसोई करने से रसोइया वेद पढने से पंडित कहा जावे है मो एक मनुष्य मे अनेक नाम उपाधी कृत होने से काल्पित कहे जावे हैं यहां पर इतना विचार करना चाहिये कि विशेषण और विशेष्य ये दो पदार्थ हैं परंतु विशेषण के विना विशेष्य

कभी न्यारा नहीं रहि सक्ता है और विशेष्य के विना विशेषण कभी न्यारा नहीं रह सक्ता है दोनों का परस्पर अविना भाव संबंध है विशेष्य तो द्रव्य रूप है और विशेषण गुण रूप है याते द्रव्य और गुण का अवि ना भाव संबंध कथन करा है इन्हीं दोनों पदार्थों के विचार को वेदांत शास्त्र ज्ञान कथ्या है सो जबतक सुगम रीतिसे नहीं समझाया जावे तबतक जिज्ञासुकी समझमें आवे इन्हीं या कारण ते प्रथम जिज्ञासु के वोध वास्ते यत् किंचत मात्र सूक्ष्म रीति से जीव चेतन्य की अविधा विशिष्ट उपाधियों को कथन करें है और उनके साथ में ही माया विशिष्ट ईश्वर चैतन्य की उपाधियों का ज्ञान आपही हो जावेगा ÷ जैसे प्रथम एक अंग के कथन से दूसरे अंग का ज्ञान आपही आप हो जावे अर्थात अंगा अंगी का ज्ञान एके के कथन से दूसरे का ज्ञान आप ही हो जावे है जैसे मनुष्य के एक २ अंगो को न्यारा२ वरनन करने से

मनुष्य व्याक्ति का बोध आपही हो जावे है। जैसे न्यारे २ वृत्तों के कथन करने से बाग का ज्ञान आपही हो जाता है और बाग के कथन से वृत्तों का ज्ञान होवे है क्यों कि बाग वृत्त का अंग अंगी भाव संबंध है बाग से वृत्त न्यारे नहीं है और वृत्तों से बाग न्यारा नहीं है वृत्तों के समुदाय को बाग कहते हैं — जब वृत्त जुदे २ करे जावें तब बाग कोई वस्तु नहीं है किंतु वृत्तों का समुदाय रूप ही बाग है वृत्तों से न्यारा नहिं है ऐसे ही समष्टि व्यष्टि रूप जीव ईश्वर का अंग अंगी भाव जानना क्योंकि जीव समुदाय को ईश्वर कहते हैं सो जीवों से न्यारा किसी स्थान पर नहीं है किंतु जीव रूप ही है और जो जीव ईश्वर का कथन है सो केवल उपाधीकृत है जैसे राजा और प्रजा दोनों एक मनुष्य के नाम उपाधीकृत हैं न्याय रक्षादिक उपाधी वाले को राजा कहते हैं और अन्याय कलहादिक उपाधी वाले को प्रजा कहते हैं देखो एक मनुष्य स्व जाती मे दो उपाधियों के भेद होने से राजा प्रजाये दो नाम कहे जाते है इसी प्रकार एक चेतन्त के अविद्या उपाधी वाला जीव और माया उपाधी वाला १ ईश्वर ये दो नाम कहे जावे हैं शुद्ध सतोगुण प्रधान जीवों का सात्विक समुदाय को माया कहते हैं और मलीन सतोगुण प्रधान जीवों का राज सतामस व्यष्टि कारण को अविद्या कहिते हैं या हेतु से जीव ईश्वर ये दोनो एक चैतन्य के उपाधीकृत नाम है

(स्वरूप) वास्तव मे दोनों एक हैं सो चैतन्य जब तक व्यष्टि रजतमगुण प्रधान अविद्या उपाधिस्थ है तभी तक उसमें राग द्वेष अहंत्वं यह व्यवहार की प्रतीत होवे है याते जी वक है है और जब राग द्वेष निवृत हो शुद्ध सतोगुण प्रधान समष्टि माया उपाधिस्थ होवे है तब उसी चैतन्य को ईश्वर कहे है यह वेदांत का सिधान्त है याते अध्यारोप अप वाद करके जीव चैतन्य की व्यष्टि अविद्या कृत उपाधियों को और उसी व्यष्टि अविद्या उपाधिस्थ जीव चैतन्य के नामों को महाराज शंकराचार्य जी — शाखा चन्द्र न्याय (करके सूक्ष्म रीति से) इस लघु वाक्य वृति ग्रंथ में तीना उपाधियों को प्रथक् प्रथक् कथन करे है।

तहां प्रथम स्थूल उपाधिको वरनन करें है

मुल. ॥ स्थुलो मांस मयो. देहः सुक्ष्मः स्या द्वासना मयः ॥ ज्ञान कर्मे न्द्रियैः सार्द्ध धी प्राणै स्तच्छ रीरगौ १

संस्कृत टीका. नत्वा श्री राम चन्द्राख्यं तत्वं वेदान्त गोरं
कुर्वे पुष्पाजलीं टीकां वाक्य वृते रविस्तरां २
इह खलु भगवान् शंकराचार्य चातुर्लक्षण मीमां सा प्रति पादिता मपि सूक्ष्म विद्यां अति कृपा लु तया संक्षेपतः उप

देष्टः कामः शासा खाचन्द्रन्या येन उपाधिस्थं ब्रह्मं दर्शयितुं आत्मनः उपाधि त्रय मध्ये प्रथम स्थुलोपाधि निंदिशेति स्थूल इति मांस मयः मांसास्थि रक्तादि प्रधान देहः आत्मनः स्थूलोपाधि स्यात् वासना प्रधान लिंग देहः सूक्ष्मोपाधिः ज्ञातव्यः धी शद्बेन मनसोप्युपलक्षणं प्राण शद्बेन एकस्यैव महा शणस्यः प्राणादयः पंचवृत्तयः एवं सप्तदश कलात्मकं लिंग शरीर मात्मनः द्वितियोपा धिरित्यर्थः १

भाषाटीका जिसमें पंच महाभूत पृथ्वी जल आग्नि वायु आकाशादिकों की पच्चीस प्रकृतियां मांस रुधिरादिक होवे सो चैतन्य की स्थूल उपाधि जानना इसी को स्थूल शरीर कहते हैं यद्यपि इस में पृथ्वी आग्नि आदिक पांचों तत्व मिले हैं तथापि आग्नि आदि चारि की प्रतीत ना होने से केवल एक पृथ्वी की प्रतीत होवे है याते पार्थिव भी कहिते है जैसाकि आगे इंगलिश के कोष्ट में लिखा है सो इतना विचारना कि अर्ध भाग पृथ्वी का है और अर्ध भाग में जलादिक चार है यात जलादिकों की प्रतीत नहीं होवे है॥ तिसस्थूल शरीर अभिमानी चैतन्य को विश्व कहते हैं

	Earth. पृथ्वी	Water. जल	Fire. अग्नी	Wind. पवन	Sky. प्रकाश
Earth.	Bone. हड्डी	Flesh. मांस	Pulse. नाडी	Sukui. त्वचा	Hair. बाल
Water.	Blood. रुधिर	Seed. वीर्य	Urine. मूत्र	Psespiration. पसीना	Silver. क्षार
Fire.	Idleness. आलस्य	Beatny. कांति	Hunger. क्षुधा	Thrust. प्यास	Sleep. निद्रा
Wind.	Shrinking. संकोचन	Go. चलना	Get up. उठना	Run. दौड़ना	Spread. फैलना
Sky.	Loin. कमरमें	Balley. पेटमें	Breast. हृदयमें	Neck. कंठमें	Head. सिरमें
Second kind of sky.	Fear. भय	Fasienation मोह	Anger. क्रोध	Wish काम	Avarice. लोभ

वास नामय सूक्ष्म शरीर ये जीवात्मा की द्वितिय उपाधि है इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं यरु सत्रह तत्व का है पांच ज्ञान इंद्रिय पांच कर्म इंद्रिया पंच प्राण मन बुद्धि ये सत्रह तत्व हैं और इसी शरीर के अभिमानी को तैजस कहते हैं । १ ।

मूल. अज्ञानं कारणं साक्षि वोधस्ते पां विभासकः वोध भासो बुद्धि गतः कर्तास्या त्पुण्य पापयो ।२

संस्कृत टी ०नृतोयो पाधि माहअज्ञानं मितिअनाद्य निर्वाच्य मज्ञानं कारणो पाधिः स्यात् यद्धानार्थ एत दुपाधित्रय मुप क्षिप्तं तत्र स्थितं शुद्ध ब्रह्म स्वरूपं निरुपयति साक्षीति साक्षात ईक्षतेसौ साक्षिवोधः आत्मानम न्विच्छुद्दांप्र विष्ट मित्यादि श्रुति प्रसिद्ध पर मार्थ सत्यः परमानंद घनः प्रत्य गात्मा कूटस्थ तेषां पूर्वोक्ता नां त्रयाणामुपाधी नांविभासकः (प्रकाशकः) सत्ता स्फूर्ति प्रदत्वेन प्रकाश कइत्यर्थ एवं शुद्धात्मनः स्वरूप मुक्त्वा संसारा अभिमान वाहक स्यजी वात्मनः स्वरूप माहवोध भासइति स्वरूप प्रति विंवितश्चिदाभासःसाधि ष्टानः पुण्य पाप कर्मणां कर्त्ता स्यात् ॥ २ ॥

भाषाटीकाः अब प्रत्माकी तीसरी उपाधि का कथन करते हैं जिस में केवल अविद्या प्रधानहो और पुण्य पापका करता भोक्ता हो

और आत्मा के साथ सदैव सम्बंध रहे सो कारण उपाधि तीसरी जानना उन तीनों उपाधियों में स्थित सत्ता स्फूर्ति के देने वाला अर्थात तीनों शरीरों का प्रकाश करने वाला शुद्ध स्वरूप साक्षी रूप चौथी अवस्था जीवात्मा की सदैव मुक्ती पर्यंत रहती है इस हेतुसे उपाधि रूप तीन शरीरों का वर्णन किया चौथेका नहीं क्योंकि वे तीनों शरीर आत्मा के साथ हमेशा नहीं रहते हैं इससे उनका कथन किया है और चौथा शरीर आत्मा का सर्वदा स्थित रहता बनता बिगड़ता नहीं और उपाधि रूप न होने से इसका कुछ वर्णन नहीं किया। २।

मूल. सएव संसरेत्कर्म वशाल्लोके द्वये सदा। बोधा भासा च्छुद्ध बोधे विविच्या दाति यत्नतः ३

किंचसएव जीवात्मा प्रारब्ध कर्म वशात् इहा मुत्रच सुख दुख भो क्ता च्या दि रूपं संसार मनुवरद मनुभवति अतांबोधा भासा स्संहारिणःजीवाच्छुद्ध बोधंकूटस्थं अति प्रयत्नेन विविच्या त्परमार्थ सत्य परमानंद घने साक्षिणि अविद्या कल्पित मुपाधि जातं साक्ष्यंमिथ्या भासत्वात्साक्षि तुपरमार्थ सत्यः केवलः विद्यते इतिविवेक दृष्ट्या शुद्ध मात्मानं जानी यादित्यर्थः भाषा टीका जो पूर्व कथन किया कि कारण शरीर अभिमानी जीवात्मा पाप पुण्य का कर्ता सोई जीवात्मा इस लोक में व पर-

लोक में सुख दुखों को भोगने के लिये शरीर को धारण करता है और दुःखों को भोगता है सो केवल दु ख सुख का भोगना अविद्या कल्पित कारण शरीरके विना शुद्ध चैतन्य कूटस्थ साक्षी आनन्द धन में नहीं हो सक्ता इस हेतुसे विवेक दृष्टि करके आत्मा को शुद्ध स्वरूप साक्षी जानना क्योंकि साक्षी की परमार्थ सत्ता विद्यमान है व्यवहारिक नहीं और जो व्यवहारिक सत्य वाला पदार्थ है व उपाधि तीनों करके संयुक्त होता है जैसा कि अगली कारिका में लिखते हैं।

मूल, जाग्रत स्वप्नयोरेव वोधा भास विडंवना॥
सुप्तौतु तल्लयाच्छुद्ध वोधो जाड्यं प्रकाशयेत् ४

संस्कृत टी.का. जाग्रत स्वप्नास्थयो वोधा भास विडंवना चिदा भास व्यवहारः सुप्तौतु चिदा भास लयात् शुद्ध वोध कूटस्थः जाड्यं अज्ञानं प्रकाशयेत् सुषु प्ति समये सर्व लयेपि कुटस्थ चैतन्यं निर्विकार तया तिष्ट तीत्यर्थः नहीं द्रष्टु र्दृष्टेः परिलोपो विद्यते ऽविना शित्वा दिति श्रुतेः सुप्तोत्थित स्य सुखा ऽज्ञानयो रनु भूय मानयो परामर्श दर्शनाच्च ॥ ४ ॥
भाषा टीका. जैसे जीव चैतन्य के शरीरों का पूर्व कथन। करा है तैसे ही अब इसकी जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीनि अवस्था कथन करते

है जाग्रत और स्वप्न को जो चैतन्य प्रकाश करता है ताकु चिदा भास कहे है और जो सुपुप्ति अवस्था मे स्थित रहे और आज्ञान को प्रकश करे ताकु कुटस्थ और साक्षी कहे है कुटवत निर्विकार चैतन्यको कुटस्थक हिते है और साक्षात (भले प्रकाश से) तीनों अवस्था को अनुभव करे याते साक्षी कहे है क्यों कि सुपुप्ति अवस्था मे जब सब वस्तु लीन हो जावे तब केवल साक्षी चैतन्य ही निर्वि कार रूपते स्थित रहे और जब सुपुप्ति अवस्था से उत्थान होकर जाग्रत अवस्था मे स्थित होता है तब ऐसा अनुभव कर्ता है कि मैं ऐसा सोआ जो मेरेको कुछ भी ज्ञान नही रहा ऐसा लोक मे परामर्श होवै है या वाक्य मे अज्ञान अंश तो अविधा उपाधी का बोधक हैं और ज्ञान अंश शुद्ध साक्षी चैतन्य का बोधक है

मूल॰ जागरे पिधियस्तू ष्णीं भावः शुद्धेन भास्यते धीव्याराश्चत द्भास्याश्चिदा भासेन संयुताः ५

संस्कृत टीका संप्रति हस्तप्राप्यमिव कृतस्थ चैतन्यं जाग्रत्य पिदर्शयति जागर इति जाग्रदवस्था या मपि बुद्धेस्तूष्णीं भाव शुद्धेन आविकार चैतन्येन कूटस्थेनभास्यते वृत्ति रहितमंतः करणं शुद्ध चैतन्ये नानु भूयत इत्यर्थ सवृत्ति कांतः करणस्य चैत

न्य द्वया वभासयत्र माह धी व्यापारा इति तद्भास्याः निर्विकार चैतन्य भास्याः धीव्यापारा बुद्धि वृत्तयाश्चिदा भासे न संयुताः धीस्थ जीवेन सहिताः भास्यंते सवृत्ति कमंत करणंतु केवले न निर्विकार चैयन्येनं कनैव भास्त इत्यर्थः ॥ ५ ॥
जाग्रत अवस्था में बुद्धि के स्थित होजाने से शुद्ध अविकारी कूटस्थ प्रकाशता है परन्तु इतना अंतर है कि सवृत्ति अंतः कर्ण को कूटस्थ और चिदा भास प्रकाशते है और निर्वृति अंतः कर्ण को केवल निर्विकार कूटस्थ चैतन्य प्रकाशता है ॥ ५ ॥

मूल वन्हित भंजलंताप युक्तं देहस्यतापकः चिद्भास्या धीस्तदा भास युक्तान्यं भासयेत्तथा ॥ ६ ॥

संस्कृत टीका, चैतन्यं द्वयं एक साक्षि चैतन्य मपरं तत्प्रति बिंब चैतन्य भासिते नातः करणे न वाह्म पदार्थों पलब्धिं दर्शयति वान्हित मिति वान्हित भंसन् यथा जलंताप युक्तं भवतितथा चिद्भास्या कूटस्थ चैतन्ये न प्रकाशिता बुद्धि स्तदा भास युक्ता चिदाभासेन प्रकाशिता सनि अन्यं घटाः दि विपयं भासयेत् कूटस्थ चिदा भास चैतन्या भ्यां प्रकाशितया बुध्या घटादि विपयं ज्ञान मुत्पद्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥
एक ही चैतन्य के दो भेदहैं एक साक्षी चैतन्य और दूसरा तत्प्रतिबिंब चैतन्य इसी को चिदा भास कहते हैं और ये साक्षी का अंश

रूप जानना अर्थात् साक्षी का प्रति भास रूप है ॥ जो अंतः करण को प्रकाशता है उसै प्रति बिंब चैतन्य और चिदाभास चैतन्य कहते हैं ॥ और यही घट पट आदिक विषियों को अंतः करण कि वृत्ति द्वारा प्रकाशताहैं ॥ जैसे अग्नि करके तपे जलमें दाह करनेकी शक्ति उतपन्न हो जाती है ॥ तैसे ही अंत करण युक्त चैतन्य घट पट आदिक विषयों का प्रकाश करने के लिये समर्थ होजाते है अर्थात् घट पट आदिक विषयों का ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

मूल॥ रूपादौ गुणदोषादि विकल्पा बुद्धिगाःक्रियाः ता क्रिया विषयैः सार्द्धं भासयंति चितिमता ७

संस्कृत टीका. बुद्धिगाः क्रियाः मनो व्यापारा रूपादौ विषये गुण दोषादि विकल्पाः भवंति रूपादि विषये इदं समीचीनमि दम समीचीनमिति कल्पनं मनो व्यापार कृत मित्यर्थः नतु चैतन्य कृत्यं तस्य निर्विकार त्वात्ताः क्रियाः मनो व्यापारा विषयैः रूपादिभिः सार्द्धं भासयंति प्रकाशयंतिचिति निर्विकारा मता एतेन स्वयं प्रकाश रूपायाः श्चितेः असङ्गऽ परिच्छिन्न रूपैरंतः करण धर्मैः सविकारत्वानसं भवतीति प्रतिपादितं ॥ ७ ॥

भाषा टीका. रूपरंगादिक विषयों के संकल्प विकल्प करणे मेंबुद्धि की वृतियों को जानना यह प्राचीन है और यह नवीन है

यह यथार्थ है और यह अयथार्थ है इत्यादिक संकल्प विकल्प मन बुद्धि में होते हैं चेतन्य में नहीं क्योंकि चैतन्य को निर्विकार स्वयं प्रकाश वेदने कहा है सो असत् जड़ परि च्छिन्न रूप अंतः करण के धर्मो ते विकारी नहीं हो सक्ता है ॥ ७ ॥

मूल. रूपाच्च गुण दोषाभ्यां विविक्ता केवलाचितिः सैवानु वर्तते रूपरसादिनां विकल्पने ॥ ८ ॥

संस्कृत टीका. किंच सैवचितिः केवलानिरुधित्वात् प्रकाशांपि रूपादि विपया तत्रत्याभ्यां गुण दोषाभ्यां विविक्ता भिन्नाः सति रूपरसादि विपयाणां विकल्पने पृथत्वग्रहणे अंतः करणाद्युपाधि वशादनु वर्तनेनस्वत शुद्ध चेतन्य स्यविकारा भावादिति अत्र तदुक्तं योग वाशिष्ठे येन शब्दं रसं रूपं गंधं जानासिराधवतमात्मा नं परं ब्रह्म जानीहि परमेश्वर मिति अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योति र्भवतीत्यादि श्रुतयः आत्मनः स्व प्रकाशत्वं शोधयंतीत्यर्थः ॥ ८ ॥
सो चैतन्य केवल निरुपाधी होने से स्वयं प्रकाश रूप है और रूप रसादि विषयों में जो चैतन्य की प्रतीति होती है सो केवल भ्रांतिहै ॥ याते अंतःकर्ण उपाधि के विषया कार परिणाम को प्राप्त होने से अंत कर्ण उपहित चैतन्य में विषियाकार प्रतीति होती है सो सत्य नहीं क्योंकि स्वतः सिद्ध चैतन्य में परिणाम का अभाव है

किंतु रूप रसादिक विषयों का द्रष्टा है ॥ जैसा कि योग वाशिष्ठ में श्री राम चन्द्र जी से वशिष्ठ जी ने कथन किया किया है कि हे रामचन्द्र जिस करिके रूप रस गंधादिक विषय जाने जाते हैं उसे परमात्मा पर ब्रह्म जानो ॥ ८ ॥

मूल. क्षणे क्षणे ऽन्यथा भूताधी विकल्पा श्चि ति-र्नेतु मुक्ता सुसूत्र वद्बुद्धि विकल्पे षुचितिः स्थिता

संस्कृत टीका. धी विकल्पाः बुद्धि वृत्तयः प्रतिक्षणं अन्यथा भूताः परिणामिनः दृश्यंते चिति स्तुनतथा कुतः परिणामा भावादात्म चैतन्यस्य तदेव दृढगति मुक्ताफलेषु यथा सूत्रं अनुस्यूतंएवं बुद्धिवृत्तिषु चितिर वस्तमनस्तु तत्त्वन स्थिता एतेन जड़शरिणा मि दृश्य रूपादिभ्यो बुद्धि वृत्तिभ्यः चिदानंद घनमपरिछिन्नं. साक्षी स्वरूपं भिन्न विद्यते इतिज्ञेयं ॥ ९ ॥

भाषा टीका. पूर्वक थित है की बुद्धि परिणामी और आत्म अपरिणामी हैं सोई अव नवमीकारिका में कहिते हैं क्षणे२इति बुद्धि की वृत्तियां सदैव काल एक रसास्थित नहीं रहतीं हैं किंतु क्षण २ में उत्पत्ति बिनाश को प्राप्त होतीं हैं और साक्षी चैतन्य सदैव यात एक रसस्थित रहता है जैसे माला के मोतियां को इत उत चलायमान होने से मध्य में स्थित तागा चलाय मान नहीं होता है ॥ ऐसे ही बुद्धि की वृत्तियों के चलाय मान होने से उनके साथ आत्मा चेतन्य चलाय मान नहीं होता है क्योंकि यदि आत्मा

को चलाय मान मानोंगे तो पूर्व देखी वस्तु को भूल जाना चाहिये सो कोई भी भूलता नहीं किंतु स्मर्ण करने से ज्ञात होता है कि यह वही वस्तु है कि जिसको मैंने प्रथम देखा था इत्यादि प्रति भिज्ञासे सूचित होताहै ॥ याते आत्मा को परिणामी नहीं कह सक्के है और यदि आत्मा को परिणामी मानोगे तो जैसे बुद्धि की वृत्तियां तीसरे क्षण में नष्ट होजाती हैं ऐसे ही आत्मा भी उनके साथ नष्ट हो जावेगा तो फिर प्रति भिज्ञा ज्ञान नहीं होना चाहिये इस कारण नित्य शुद्ध बुद्धि चैतन्य एक रस अपरिमाणी सिद्ध भया ९

तदेव शुद्ध चैतन्यात्मक कूटस्थ स्वरूपं युग्मेनस्प ष्ट मुपपाद यति मूल ॥ मुक्ताभिरा वृन्त सूत्रे मुक्तयोर्मध्य ईष्यते तथावृत्ती विकल्पे श्चित्स्पष्टा-मध्ये विकल्पयो: १०

नष्ठे पूर्व विकल्पेतु यावदन्यस्य नो दयः ॥निर्वि कल्पक चैतन्यं स्पष्ठं ता वद्विभासते ॥ ११ ॥

संस्कृत टीका. मुक्ता भिरिति यथा मुक्ताभिरा वृतं आच्छा दितं सूत्रं मुक्तयो द्वाये मध्ये ईष्यते स्पष्ट भासते तथा विकल्प बुद्धि वृत्तिभिरावृताच्छा दिताचित् कूटस्थ चैतन्यं विकल्प·

यो बुद्धि वृत्यो र्मध्ये स्पष्टा सति प्रकाशति तदुक्तं विद्यारण्य श्री पादः संभयो खलु वृतीना मभावा श्चाव भासिता निर्विकारेण ये नासौ कूटस्थ इति चोच्यत इति अत? बुद्धि वृति संधिषु साक्षि शुद्ध चैतन्यानु भवो भवतीति भावः १०

किं बुद्धि वृत्ति रूप पूर्व विकल्प नष्टे सतियावद्बुद्धि वृत्ति रूपस्याऽन्यस्य विकल्पस्य उदयः आविर्भावो नभवति तावत्स्यष्ठंनिर्विकल्पक् चैतन्यं शुद्धात्म स्वरूपं शुद्धत्वं पदलक्ष्यं विभासते निर्वृतिक मंतः करणं शुद्ध चैतन्य रूपेण कूटस्थे नानु भूयत इत्यर्थः अतः प्रोक्तं जागरेपिधिस्तू पर्णा भावः शुद्धेन भास्यते इति ११

भाषार्टीका,सो अब शुद्ध चैतन्य कूटस्थको दोकारिको मेंस्पष्ट रीति से कथन करे है ॥ जैसे माला में तागा मोतियोंसे आच्छादित रहता है और जब मोतियों को इत उत को हटाते हैं तब दोनों मोतियों के मध्य में तागा स्पष्ट रूपते दीख पड़े है तैसे ही बुद्धि की वृत्तियों से ढका भया चैतन्त स्पष्ट रीति से प्रतीति होवे नहिं और जब बुद्धिकी वृत्तियां स्थित हो जावें हैं तब साक्षी चैतन्य स्पष्ट रूप से प्रतीति होवे है जैसे हालते भये जलमें मुखकी परिछांही प्रतीति होवे नहीं और जब जल स्थिर हो जावे है तब स्पष्ट रूप से मुख कि परिछांही देखे पड़े है ऐसे ही जब सब [illegible] बुद्धि की वृत्तियां [illegible] शुद्ध [illegible] प्रतीति होवे है और [illegible] से [illegible] करके देखा जावे

तो सर्व जनों को अनुभव होवे है ॥ क्यों कि जब कि बुद्धि कि वृत्तियां पूर्व पूर्व नष्ट होतीं जाती हैं और उत्तर उत्तर कि उत्पन्न नहीं होने पाती है ॥ तावत् परियंत साक्षी चैतन्य स्वयं प्रकाश रूप प्रतीत होवे है याते बुद्धि की वृत्तियोंको विषयादिकों से निर्धि तेकरना चाहिये औ पंचम श्लोकमे पूर्व कथन किया है कि जाग्रतमे भी बुद्धि कि वृत्तियां तु पर्णीं मात्र होने से सुख स्वरूप कि उपलब्धि होवे है ॥ ११

मूल- एक द्वित्रि क्षणे नैव विकल्पस्य निरोधनं। क्रमेणा भ्यस्यतां यत्ना दब्रह्मानु भव का ंक्षिभिः १२

संस्कृ. टी. एकेति ब्रह्मानु भवकांक्षिभिः एकद्वित्रिक्षणे न एव मनु क्रमेण प्रयत्नाद्धि कल्पस्य अंतः करण निवृत्ति कं कृत्वा शुद्ध चैतन्य स्वरूपानु भवो ज्ञानिनानु भवितुं शक्य तइत्यर्थः १२

भाषा टीका और कोई कोई मोक्ष कि कामना वाले महात्मा लोग (जन) ऐसे कथन करै है कि प्रथम एक क्षण और फिर दो क्षण फिर तीन क्षण क्रम से धीरे धीरे अंतः करण कि वृति- यों के रोकने का अभ्यास करे और जब बुद्धि की वृतियां वसमे हो जावे तब शुद्ध स्वरूप चैतन्य साक्षी रूप अपने को जाने ॥ १२

मूल- सवि कल्प कर्जावोऽ यं बृह्मस्या न्निर्विकल्पं अहं बृह्मेति वाक्येन सो यमर्थो विधीयते । १३ । सवि कल्प क चियोऽहं बृह्मैकनिर्वि कल्पकं ॥ स्वतः सिद्धा विकल्पा स्ते निरोध व्याः प्रय-त्नतः १४

संस्कृत टीका एतदेव प्रतिपादय न्नाह सवि कल्पक जीव इति गुरु शास्त्राद्युपदेशात् पूर्वं यं सवि कल्पक चैतन्य रूपो जीवः ज्ञानोप देश समये ऽहंबृह्मेति महा वाक्यानु भवेन निर्विकल्पकं शुद्ध सच्चिदा नन्द स्वरूपं ब्रह्मैव स्यात् सो यमुप निषद्भिः प्रति पादितो र्थः अस्मिन् ग्रंथे भिधीयते प्रति पाद्यते यथा रज्जु सर्पः रज्जुरेव ति रिक्तो नास्ति इत्ये वं वेदांत मर्यादा इत्यर्थः किंच सवि कल्पक चैतन्य रूपोपि जीवः निवृत्ति क अंतः करणो भ्यास वाशा दृष्टते सति निर्वि कल्पकं शुद्ध बोध स्वरूप एक मखंड मखंडैव भवति अतः स्वतः सिद्धाः विकल्पाः अंतः करण वृतयः प्रयत्नतः वृत्युपत्ति निरसनेन निरोधव्याः वृत्ति रहिते तः करणं शुद्ध चैतन्य स्वरूप मनुभूयते अतः वृत्ति रहित मंतः करणं कृत्य आत्म सुख मखंड मनु भूयता मि त्यर्थ ॥ १३ ॥ १४ ॥

भाशा टीकाः सोइ अर्थ अव दो श्लोकों में कथन करे है कि : जब तक गुरु शास्त्र का उपदेश इस को नहीं होवे है तव तक अपने को परिछिन्न जीव रूप जाने है और पुराय पाप का करता भोक्ता माने है और जब गुरू शास्त्र का उपदेश होवे है तव अपने को शुद्ध सच्चिदानंद पर ब्रह्म रूप जाने हैं ॥ जैसे जेवरी के विना जाने सर्प की प्रतीति होवै है और जब जेवरी का यथार्थ रूप से ज्ञान होवे है तव सर्प कि भ्रांति मिटा जावे है ॥ ऐसे ही जब तक चैतन्य को यथार्थ रूप से ज्ञान नहि होवै तब तक जीव ब्रह्म की भ्रांति मिटे नहि है ॥ और जब यथार्थ रूप से ज्ञान होवे है तव जीव ब्रह्म कि भ्रांति मिटि जावे है यह वेदांत कि मर्यादा है १३ ॥ १४ ॥

मूलः शक्यः सर्व निरोध श्वेत्स माधिज्ञानिनांप्रियः तद शक्तौ चणरूध्वा श्रद्धया ब्रह्मनात्मनः १५ श्रद्धालु ब्रह्मंतां स्वस्थचिंतये ह्यद्धि वृत्तिभिः वाक्य वृत्या यथा शक्ति ज्ञात्वाज्ञभ्य स्यतां सदा १६

संस्कृत टीका, तद्बोध पादयति शक्य इति यदि सर्ववृत्ति निरोधे शक्यो भवेत्तर्हि ज्ञानिनां [illegible]

इष्ट समाधि रेदस्यादत तदशक्तौ सर्वदांत करण वृत्ति निरोध सामर्थ सति दृणं रूप्य दृणं मात्र मपि वृत्ति निरो- धं कृत्वात्मनो ब्रह्मता श्रद्धया अनुसंधेया तथाचश्रुतिः यदायं चावतिष्टते ज्ञानिना मनसा सह ॥ बुद्धि श्चन विचेष्टेत ता माहुःपरमांगतिं तांयो गामिति मन्यते स्थिरामिं द्रियधारणाम् ॥ अप्रमत्त स्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्य यादिति १५ श्रद्धा लुः मुमुक्षुः स्वस्यात्मनः ब्रह्मतां वृद्धि इति भिरा मा कारा कारि ताभिरंतः करण वृति भिः चिंतयेत स्वयंब्रह्म सुख मात्मा कारांतः करणेन जानीया दित्यर्थः एवंयथाबुद्धयनुसारेण शास्त्र वृत्या वाक्यवृत्ति ग्रंथालोचनेनयद्वा महा वाक्य वृत्या स्वात्य ब्रह्मत्वं मेकाग्रतयाज्ञात्वा सदाभ्य स्यतां श्चात्मसंरामृतं,कालं नयेद्वेदांत चिंतया ॥ दद्यान्नावमरं किंचित्कामादीनां मनागपि इति वचनात् ॥ १५ ॥ १६ ॥

भाषा टी- जो पूर्व कथन किया है कि एक शुद्ध चैतन्य में जीव और ब्रह्म दोनो की कलपना मिथ्या है ॥ जैसे सुर्य मे रात्रि और दिनों दोनों की कल्पना ॥ मिथ्या है । सोइ अब समाधि द्वारा कथन करै है

क्योंकि जो अंत करण कि वृत्तियों को निरोध करणेमे समर्थ होवे है तिस को ही समाधी की सिद्धि होवे है और जो अंत करण की वृत्तियां को रोकने में समर्थ नहीं है ताकुं समाधी की सिद्धि होवे नहि है और समाधी के बिना सिद्ध भयं जो जीव ब्रह्म की

एक चैतन्य विषे उत्पन्न भई जो द्वैत कल्पना सो मिटे नहीं याते अंतः करण की वृत्तियों को बाह्य विषयों में से प्रथम हटावै और फिर शुद्ध चैतन्य विषे जीव ब्रह्म के भेद अभेद को विचार करै ॥ जब पूर्ण रीति से अद्वभाव निश्चिय हो - जावै तब अपने को समुद्र वत् स्थिर गंभीर अचल पूर्ण सच्चिदानन्द चैतन्य ब्रह्म मैहूं और मेरे मे जन्म मृत्यु पाप पुण्य सुख दुःख बंध मोक्ष कल्पित है ॥ ऐसे विचार करै याहि विचार को वासिष्ट आदिक रिषियों ने समाधी कथन करा है और वेद में लिखा है कि जब मन और बुद्धि में संकल्प विकल्प उत्पन्न नहीं होवै तब उसको परम गति और परम पद मुक्ति की प्राप्ति जानो या हेतु ते मोक्ष की कामना वाला अथवांत सदैव काल अपने चैतन्य स्वरूप का धारणा ध्यान समाधि द्वारा चितन करै और श्रवण मनन दिध्यासन करै जैसा कि आगे के श्लोकों में कथन करें है ॥ १५ ॥ १६ ॥

मूल, तच्चिंतनं तनतत् कथनं तत्परस्पर बोधनं।
तदेक परत्वं चब्रह्माभ्यासं विदुर्व,ःधाः ॥१७॥
देहात्म धीवद्ब्रह्म धीदार्ढ्ये कृतकृत्यता। यदा
तदायं म्रियतां मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥ १८ ॥

संस्कृत टीका, तदेवाभ्यास स्वरूपं दर्शयति तच्चिंतन मिति मनसा विपयांतर निरासेन तस्य ब्रह्मणः चितनं तस्यैव

अन्यो ऽन्य प्रबोधन प्रकार एतदेक परत्वं शुद्ध चैतन्यैक परता ज्ञानं तमेवैकं जानथ आत्मा नमन्या वाचो विमुंचथ अमृत स्यैष सेतुरिति श्रुतेः एतत्स र्वंग्रसाभ्यास लक्षणमाचा र्यैः प्रति पादित मित्यर्थः ॥ १७ ॥

ग्रंथाभ्यास फल माह देहात्म धीवदिति यथा देहात्म बुद्धि र्दृढातरास्ति तथा ब्रह्मात्म दार्ढ्यं सति कृत्य कृत्यत्वं मित्यर्थः वदुक्त मुप देश साह स्त्रयांदहात्म ज्ञानव द्यानं । देहात्म ज्ञान बाधकं ॥ आत्मन्येव भवेद्यस्यसने छन्नापि मुच्यते इति एवंयदा तदायं छिनयां पंच भूतात्मकं देहं परित्यज्यापरि छिन्न ब्रह्म स्वरूपे तिष्ठतु एवं भूतावस्थैव विदेह मुक्ति रित्य र्थः आत्म लाभात्परं लाभंनियते भुवि किंचनं ब्रह्म विद्ब्रह्म व भवति ॥

भिद्यते हृदय ग्रंथिः छिद्यते सर्व संशयाः क्षीयंते चास्य कर्मा णि तस्मिन् दृष्टे परावरे । अध्यात्म योगा धिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति इति श्रुतयः आत्मविदः अनर्थ हानि मात्मस्वरूप सुख प्राप्ति च प्रतिपा दयं तीत्यर्थः ॥ १८ ।

भासाटीका, मुमु क्षु सदैव काल अपने मनको एकाग्र करके शुद्ध चैतन्य मेंबन्ध मोक्ष और जीव ब्रह्म के भेद अभेद पाप पुण्य सुख दुःख जन्म मरणादिकों को चिंतन करे कि यह वास्तव से बन्ध मोक्षादिक ,चैतन्य में स्वरूप से हैं या कल्पित हैं इस प्रकार

रात्रि दिन चिंतन करने को मनन कहते हैं ॥ और उसी चैतन्
सम्बन्धी बातों का जिस शास्त्र में कथन होवे उसे श्रवण क
और दूसरे को सुनावै और परस्पर वार्तालाप करै याही को श्रवण
कहते हैं और श्रवण मनन करने से जब मनके संकल्प विकल्प मि
जावें ॥ तब समाधि सिद्ध होवे है जैसे सूर्य में रात्रि और दि
की कल्पना झूठी है तैसे ही एक शुद्ध चैतन्य में बंध मोक्षादि
की कल्पना झूंठी है किंतु सत्य नहीं है जब ऐसा निश्चय हो
कि कोई द्वैतवादी सिद्धान्त को खंडन करने में समर्थ नहीं
तब अपने को धन्य वाद करे कि मैं अब कृत कृत हो गया ह
को कोई कर्तव्य नहीं है मैं शुद्धबुद्ध स्वरूप अजर अमर अवि
चैतन्य हूं और मैं शरीर इंद्रियादिक रूप नहीं हूं किन्तु इ
पृथक् हूं सोहं सोहं इस मंत्र का जप सदैव काल सोते जागते
बैठते चलते फिरते करे या प्रकार समाधी को निदिध्यासन
हैं और इसी को वेदान्त शास्त्र का फल और ब्रह्माभ्यास
हैं सो यावत् पर्यंत शरीर से अहं बुद्धि न छूटे तावत् पर्यंत क
चाहिये ॥

इति स्वामी सरयुदास कृतसर लार्थ
पुष्पां जली टीका सम्पूर्ण

